5

यीशु ने अपने यहूदी समाज में कैसे मेल खाया?

विद्वानों और संदेहवादियों ने आविष्कार में से यह तय करने में कि ''वास्तविक यीशु ने वास्तव में क्या कहा और क्या किया'' प्रमाणिक को निकालने की कोशिश की है। ''इतिहास वाले यीशु'' यानी वह यीशु जो वास्तव में रहा और ''विश्वास वाले यीशु'' (जो मसीही लोग उसमें विश्वास करने लगे) में अन्तर करने की कोशिश में कइयों ने यीशु को पूरी तरह से यहूदी मत के प्रभाव से अलग कर दिया है, जिसमें वह पला-बढ़ा और जिसका वह एक भाग था और उदाहरण के लिए यीशु सेमिनार के लोग यह ज़ोर देते हैं कि यीशु की व्याख्या यहूदी मत के बजाय यूनानी मत (यूनानी संस्कृति) के पृष्ठभमि के विपरीत हो। यह बेतुका है, क्योंकि यीशु एक यहूदी था जो, जहां तक हमें मालूम है अपने समस्त व्यस्क जीवन के दौरान कभी फलस्तीन से बाहर नहीं गया।

यीशु के अपने यहूदी समकालीनों से बिल्कुल अलग होने की अपेक्षा करने के बजाय, हम उसे यहूदी मत से अत्यधिक प्रभावित होने और इस प्रभाव को उसकी अपनी शिक्षाओं और व्यवहारों में दिखाने की अपेक्षा करेंगे। इसी प्रकार सुसमाचार के वृत्तांतों में उस पर की गई टिप्पणियों पर हम इस यहूदी मत की झलक देने की अपेक्षा करेंगे। वास्तव में सुसमाचार के वृत्तांतों में हमें यही मिलता है: यीशु को अपने समय के यहूदी मत के संदर्भ में यानी एक यहूदी के रूप में दिखाया गया है। जो निश्चित रूप से मामलों को अपने ढंग से देखता था।

हमें यह पूछना चाहिए कि ''यीशु उस यहूदी समाज में से जिसमें वह रहता था, कैसे मेल खाता था?'' उसने किस हद तक और किस प्रकार अपनी यहूदी विरासत को दिखाया? उसने किस हद तक और किस प्रकार अपने आपको इससे दूर रखा? जब तक हम इन प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं ढूंढ पाते तब तक हमें यीशु की स्पष्ट ऐतिहासिक तस्वीर मिलने की कोई उम्मीद नहीं हो सकती। सौभाग्य से सुसमाचार की पुस्तकें हमें काफ़ी जानकारी देती हैं-जैसे जोसेफ़स के लेखों जैसे अन्य समकालीन स्रोत भी।

I. यीशु का यहूदी विश्वास

हमारे पास ऐसा क्या संकेत है कि यीशु वास्तव में एक श्रद्धालु, यहूदी था, जिसका विश्वास यहूदी धर्म के मूल विश्वासों में मज़बूत था। सुसमाचार के विवरणों को ऊपर से पढ़ने पर भी यह पता चल जाता है कि यीशु इब्रानी धर्मशास्त्र में लिखी घटनाओं को वास्तविक मानता था। उसने पुराने नियम की शिक्षाओं और घटनाओं तथा उसके विभिन्न पात्रों के जीवनों के बारे में हवाले इस प्रकार दिए जिससे उनकी वास्तविकता और वैद्यता को उसके पूरी तरह से स्वीकार करने का सुझाव मिलता है (उदाहरण के लिए देखें मत्ती 11:20-24; 12:1-8; मरकुस 10:17-22; 12:24-27)। इसके साथ-साथ यीशु ने पवित्र शास्त्र के लिए गहरी आस्था भी दिखाई, जिसका

प्रमाण उसके द्वारा उन्हें उद्धृत करने से मिलता है। लूका 4:1-13में यीशु ने शैतान की परीक्षाओं का उत्तर यह कहते हुए दिया, ''लिखा है, ... और फिर व्यवस्था विवरण से उसका हवाला भी दिया'' पहाड़ी उपदेश में उसने व्यवस्था को और भविष्यवक्ताओं को खत्म करने की नहीं, बल्कि उन्हें पूरा करने की अपनी मंशा बताई। उसने घोषणा की कि उन में लिखी हर बात का पूरा होना आवश्यक है और छोटी से छोटी आज्ञाओं में भी ढील देने के विरुद्ध चेतावनी दी (मत्ती 5:17-19)। लूका 4:16 यीशु के अपने गृहनगर नासरत में आराधनालय में जाने की बात लिखता है, जहां उसने भविष्यवक्ताओं की पुस्तक में से पढ़कर उस सभा में भाग लिया।

लूका 4 उसी घटना के विवरण में कहता है, यह संकेत देते हुए कि आराधनालय में जाना यीशु की आदत थी ''और अपनी रीति के अनुसार सब्त के दिन आराधनालय में जाकर पढ़ने के लिए'' गया। मत्ती 17:24-27 यह संकेत देता है कि यीशु आधा शकेल कर चुकाया करता था। जो मन्दिर की सहायता के लिए इकट्ठा किया जाता था। इसके अलावा यीशु फसह के पर्व के दौरान मन्दिर में जाकर और अपने चेलों के साथ फसह के भोज में भाग लेकर व्यवस्था की शर्तों को मानता था। ऐसे संकेत हैं कि यीशु अपने समय के कई यहूदी संस्थानों को मानता था, बेशक वह उन सब से पूरी तरह से सहमत नहीं था (मत्ती 23:1-3)।

यीशु एक श्रद्धालु, व्यावहारिक यहूदी था; परन्तु वह समकालीन यहूदी धर्म से कैसे मेल खाता था?

II. यहूदियों के आम तौर पर माने जाने वाले विश्वासों की चित्रभूमि

पहली शताब्दी ईस्वी में यहूदी मत की आम विशेषताएं यहूदियों को प्राचीन संसार के अन्य लोगों से अलग करती थीं। वे विशेषताएं क्या थीं?

एकेश्वरवाद

एकेश्वरवाद का सरल अर्थ यह है कि ''परमेश्वर केवल एक है।'' सर्वदेव मन्दिर वाले देवताओं के बजाय जो संसार के विभिन्न भागों में नियन्त्रण रखते थे और जो आमतौर पर एक दूसरे से लड़ते रहते थे, के बजाय प्राचीन लोगों में केवल यहूदी ही थे जो एक परमेश्वर में विश्वास रखते थे। (मिस्र में फिरौन द्वारा एकेश्वरवादी धर्म का एक संक्षिप्त काल लागू किया गया था, पर यह केवल तब तक रहा, जब तक वह रहा।) इस विलक्षण यहूदी दृष्टिकोण को उन आयतों में व्यक्त किया गया है, जिन्हें *शेमा* कहा जाता है: ''हे इस्राएल, सुन, यहोवा हमारा परमेश्वर है, यहोवा एक ही है; तू अपने परमेश्वर यहोवा से अपने सारे मन, और सारे जीव, और सारी शक्ति के साथ प्रेम रखना'' (व्यवस्थाविवरण 6:4, 5)। हर श्रद्धालु यहूदी द्वारा दिन में दो बार यह बुनियादी धर्मसार दोहराया जाता था। इसमें ''दस आज्ञाओं'' में से पहली आज्ञा कि ''तू मुझे छोड़ दूसरों को ईश्वर करके न मानना'' (निर्गमन 20:3; व्यवस्थाविवरण 5:7) थी।

सदियों से यहूदी लोगों का एकेश्वरवाद सबसे अलग इस बात में है कि प्राचीन संसार के अन्य लोग एक-दूसरे के देवताओं को अपने देवता के रूप में मान लेते थे। जिसे समन्वयवाद कहा जा सकता है। हारे हुए अधीन लोगों पर समन्वयवाद लागू करना सामान्य ढंग था और अपने पूरी इतिहास में यहूदी लोग कई विदेशी शक्तियों से हारे थे। आम तौर पर वे इस प्रवृत्ति का सामना

करते थे, बेशक जैसा कि नबियों ने दिखाया कि कई बार वे इसके शिकार हो जाते थे (यिर्मयाह 2:4-13; यहेजकेल 8:7-18; देखें 1 राजा 18:1-46)। बाहरी देवताओं की पूजा करने के दोष की भविष्यवाणी यहूदियों के मज़बूत एकैश्वरवादी विश्वासों का प्रमाण है।

चयन

अब्राहम के साथ परमेश्वर की वाचा के आधार पर (उत्पत्ति 12 और 15) यहूदी लोग अपने आपको उन विशेष चुने हुए लोगों को देखते थे, जिनके द्वारा परमेश्वर ने संसार में उद्धार को लाने का काम करना था। उनका इतिहास अपने संसार में छुटकारे के परमेश्वर के कार्यों का इतिहास था। इस विश्वास के कारण निश्चित रूप से उनमें अलग होने का बोध आया जिसमें जातीय और धार्मिक मिलावट का भय भी था। यह चिन्ता बाबुल में निकाले जाने के दौरान और उससे बिल्कुल बाद और बढ़ गई, जब अलग लोगों के रूप में रहना केवल धर्मशास्त्रीय ही नहीं, बल्कि जीने का भी सवाल बन गया। एज्रा और नहेम्याह की पुराने नियम की पुस्तकें दिखाती हैं कि किस प्रकार इस विश्वास ने देश निकाले के बाद के काल में बड़े व्यावहारिक मामलों में कार्य किया।

सुसमाचार की पुस्तकों में चयन का यह मज़बूत बोध और इससे मेल खाता निरालापन यहूदियों और सामरियों के बीच के झगड़ों में स्पष्ट मिलता है। सामरियों का उदय पूरी तरह से स्पष्ट नहीं है, परन्तु स्पष्ट रूप में वे उन यहूदियों के साथ अन्तर विवाह की संतान थे, जो देश निकाले के दौरान फलस्तीन में रह गए थे और उन्होंने अपने अन्यजाति पड़ोसियों से विवाह कर लिए थे। देश निकाले में गए यहूदियों के वापस आने पर जिन्होंने बड़ी सख्ती से विदेशी धरती पर अपनी यहूदी पहचान को बनाए रखा था, वे पीछे हर गए, उन लोगों पर क्रोधित हुए जिन्होंने इतनी जल्दी समझौता कर लिया था। परिणाम सदियों शत्रुता, अविश्वास और ठुकराया जाना था। यहूदियों ने अपने आपको दोबारा बने यरूशलेम के मन्दिर से अलग पाने पर, उचित यहूदी धर्म से अलग कर लिया और फलस्तीन के उत्तरी भाग (''सामरिया'') में गिराज़ीन पहाड़ पर अपने लिए एक वेदी बना ली। यह तथ्य यूहन्ना 4 में कुएं पर यीशु और सामरी स्त्री के बीच हुई चर्चा की पृष्ठभूमि में था। यह धन्य सामरी के यीशु के दृष्टांत के ज़ोरदार गुण को भी दिखाता है: यह विचार ही कि ठुकराई हुई जाति का कोई व्यक्ति सही काम करे जबकि यहूदी याजक और लेवी ने उसे ठुकरा दिया हो, चौंकाने वाला था! यहूदी/सामरी झगड़े का होना यहूदियों के परमेश्वर के विशेष लोग होने के लिए बुलाए जाने और चुने जाने के बाद के महत्व की पुष्टि करता है।

व्यवस्था

मिस्र से निकलने और दस आज्ञाओं को दिए जाने में पीछे जाएं तो व्यवस्था ने यहूदी विश्वास और प्रतिदिन के जीवन में एक प्रमुख भूमिका निभाई। 586 ई.पू. में बाबुल के लोगों के द्वारा मन्दिर के विनाश के बाद व्यवस्था जैसे राष्ट्रीय पूर्वाधिकार बन गई। इसके दो कारण थे। पहला यह कि व्यवस्था वहनीय थी। मन्दिर के नाश होने और विदेशी धरती में उनके लिए सेवा के लिए कोई याजक न होने के कारण, निर्वासित लोगों के पास स्थिरता और अगुआई देने के लिए अभी भी व्यवस्था थी। दूसरा व्यवस्था को कठोरता से मानना यहूदी लोगों कि जहां भी वह रहें जीवित लोगों को सुनिश्चित करते हुए, उन्हें दूसरे लोगों से अलग करता था। विशेषकर यह

खतने, अशुद्ध और शुद्ध भोजनों तथा सब्त के दिन के सही ढंग से मानने सम्बन्धी नियमों के लिए सत्य था, क्योंकि ये बातें यहूदी धर्म के लिए व्यापक रूप में विशेष मानी जाती थीं।

निर्वासन के दौरान और बाद में व्यवस्था पर बढ़ना सम्भवतया आराधनालय के नाम से प्रसिद्ध संस्थान के बढ़ने का कारण है। बेशक पुराने नियम में आराधनालय का कोई उल्लेख नहीं है पर यीशु के समय तक यह यहूदी धार्मिक और सामाजिक जीवन का स्वीकृत भाग था। स्पष्टतया आराधनालय का उदय प्रार्थना, व्यवस्था के अध्ययन और यहूदियों के अपने देश से निकाले जाने के समय आराधना के स्थानों के रूप में हुआ। अन्ततः वे पूरे फलस्तीन में फैल गए क्योंकि मन्दिर को बनाने का समय नहीं था। उन पर गुरुओं के उस वर्ग का कब्जा हो गया, जिन्हें रब्बी कहा जाता था, जो व्यवस्था के स्वीकृत विद्वान थे।

मन्दिर

यरूशलेम का मन्दिर व्यवस्था द्वारा बताए गए यहूदियों के बलिदानों के प्रबन्ध और विभिन्न पर्वों के वार्षिक मनाए जाने का मुख्य केन्द्र था। याजक लोग बलिदानों की निगरानी करते, मन्दिर में काम करते थे। इसलिए यह सभी यहूदियों के लिए सबसे प्रमुख था। उनके पास एक ही मन्दिर था, जहां उन याजकों द्वारा जो इंचार्ज होते थे, बलिदान भेंट किए जाते थे। (इसके विपरीत आराधनालय कई थे और उनका संचालन याजकों द्वारा नहीं, बल्कि आराधनालय के हाकिमों और व्यवस्था के सिखाने वालों के द्वारा होता था यानी वहां कोई बलिदान भेंट नहीं किया जाता था।) सभी यहूदियों के लिए इसके प्रमुख महत्व के बावजूद और कुछ हद तक इसके कारण, मन्दिर यहूदी धर्म में कई विवादों का केन्द्र भी था। रोमी काल के दौरान महायाजकों की नियुक्ति रोमियों द्वारा विजयी अधिकारियों के साथ सहयोग सुनिश्चित करने के लिए की जाती थी। इन अगुओं में यदि कोई योग्यता होती थी तो वह आम तौर पर बहुत कम होती थी और वे आम तौर पर राजनैतिक षड्यन्त्र करने और व्यवस्था के मानकों को तोड़ने में सम्मिलित रहते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि ऐसेन जैसे कुछ यहूदी गुट मन्दिर और इसकी याजकाई को निराशापूर्ण ढंग से भ्रष्ट मानते थे और इसके साथ किसी प्रकार का व्यवहार रखने से इनकार करते थे।

आने वाला युग

सदियों की विदेशी सत्ता के बाद, पहली सदी के फलस्तीन के यहूदी उस समय की राह देख रहे थे, जब परमेश्वर उनके दमनकार्यों को उखाड़ फैंकेगा और देश की पहले वाली शान और स्वतन्त्रता बहाल कर देगा, जैसी दाऊद और सुलेमान के दिनों में थी। कई तो मसीहा (''अभिषिक्त'') कहलाने वाले एक विशेष अगुवे के आने से इस ''सुनहरी युग'' के शुभारम्भ की उम्मीद कर रहे थे। आने वाले एक मसीहा में विश्वास करने वाले लोगों में उसकी पहचान पर कई विचार पाए जाते थे; परन्तु अधिकतर उसके योद्धा-राजा अर्थात ''दूसरा दाऊद'' होने की उम्मीद करते थे जो रोमी शासन को उखाड़ फैंके और इस्राएल को उसका राज्य फिर दे। मसीहा से जुड़े उनके विचारों के बावजूद, अधिकतर यहूदी ''इस्राएल के बहाल होने'' (लूका 2:25 में ''इस्राएल की शांति'' कहा गया) और ''राज्य'' के आने की राह देख रहे थे। इन पूर्वानुमानित घटनाओं ने महिमा और स्वतन्त्रता का समय वापस ले आना था।

व्यक्तिगत निष्ठा

मन्दिर में ठहराए गए बलिदानों और बड़े सार्वजनिक पर्वों तथा आराधनालय में आराधना के अलावा यहूदी लोगों के पास परमेश्वर के लिए अपने व्यक्तिगत समर्पण को दर्शाने के आम ढंग थे। वे निष्ठा के तीन मुख्य कार्यों अर्थात प्रार्थना, उपवास और ''दान'' करने (निर्धनों को देने) पर आधारित थे। पहाड़ी उपदेश में यीशु ने इस बात पर ज़ोर देने के लिए कि परमेश्वर के लिए किसी का समर्पण दिखावे के लिए नहीं होना चाहिए, इन तीनों कार्यों को बाहर कर दिया (मत्ती 6:1-18)।

यहूदी लोगों के मुख्य विश्वासों तथा व्यवहारों में से कुछ यही हैं, जो यीशु के समय में आम थे। इन्हें ध्यान में रखते हुए आइए उन ढंगों को देखते हैं, जिनमें यहूदी लोग अपने आप में भी अलग थे।

III. यहूदियों की विभिन्नता और झगड़ों की चित्रभूमि

अब हमें पता है कि पहली सदी के यहूदी लोग एक दूसरे से बिल्कुल और बड़ी बारीकी से अलग थे। यीशु के समय में यहूदी मत में कई विभिन्नताएं पाई जाती थीं। कई प्रसिद्ध समूह थे, जिनमें व्यवस्था की व्याख्या और इसे मानने की हर किसी की अपनी सोच थी।

समूह

(1) *फरीसी।* फरीसी लोग सुसमाचार के विवरणों में सबसे अधिक बार आने वाले यहूदी समूह हैं, अधिकतर इसलिए क्योंकि वे आमतौर पर सब्त के नियमों और शुद्धता के नियमों जैसे मामलों पर यीशु का विरोध करते थे। परिणामस्वरूप हमें आमतौर पर (चाहे विशेष रूप में नहीं) उनकी नकारात्मक तस्वीर मिलती है। जोसेफ़स ने कहा कि लगभग 6000 फरीसी थे और आम लोगों में उनका बड़ा प्रभाव था। अधिकतर वे लोग मध्य वर्ग के कारोबारी लोग होते थे।

उनका मुख्य फोकस व्यवस्था को पूरा करना था। व्यवस्था की रक्षा के लिए उन्होंने व्यवस्था से भी कठोर नियम बनाए थे, जिसे वे ''बाड़ लगाना'' या (''बाड़ा लगाना'') कहते थे। विचार यह था कि यदि कोई ''बाड़े'' को नहीं लांघता तो व्यवस्था को तोड़ेगा भी नहीं। फरीसियों ने ''व्यवस्था'' की अपनी परिभाषा में पुराने नियम में पाई जाने वाली केवल मूसा की व्यवस्था को ही नहीं, बल्कि अपनी ''मौखिक परम्परा'' को भी जोड़ लिया। जिसे कई बार ''पुरखों की परम्परा'' कहा जाता था। इनमें से कुछ लोग मरे हुओं के जी उठने, मृत्यु के बाद जीवन और स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं के अस्तित्व को मानते थे (देखें प्रेरितों 23:8)।

(2) *सदूकी।* पहली सदी के यहूदी मत के भीतर और मुख्य समूह के लोगों को सदूकी कहा जाता था जो उच्च वर्ग से थे। इस गुट में याजक लोग होते थे जो मन्दिर में सेवा करते थे। आम लोगों में चाहे फरीसी अधिक प्रसिद्ध थे पर मन्दिर और वहां की गतिविधियों पर नियन्त्रण सदुकियों का था। फरीसियों के विपरीत जो यूनानी भाषा बोलने वालों के प्रभाव का सामना करते रहते थे, सदूकी लोग समझौते को तैयार रहते थे जिसके कारण आम यहूदी की नज़र में वे संदेहास्पद थे।

धर्मशास्त्रीय अर्थ में कहें तो फरीसियों की तुलना में सदूकी लोगों का व्यवस्था के लिए

अधिक निषेधात्मक विचार था। वे केवल तोरह (जिसका अर्थ ''निर्देश'' है) को ही जिसमें उत्पत्ति, निर्गमन, लैव्यव्यवस्था और व्यवस्थाविवरण की पुस्तकें हैं, पूर्ण अधिकार के रूप में मानते थे। वे फरीसियों की मौखिक परम्परा और मृत्यु के बाद जीवन, स्वर्गदूतों तथा दुष्टात्माओं की अवधारणाओं को नकारते थे। इसकी झलक हमें लूका 20:27-40 में कुछ सदूकियों द्वारा यीशु से पूछे गए प्रश्न में मिलती है।

(3) *असेनी।* जैसा कि पहले कहा गया है कि कुछ यहूदी मन्दिर और इसकी याजकाई को निराशाजनक ढंग से भ्रष्ट मानते थे। इस कारण वे यहूदी जीवन की मुख्य धारा में से निकल गए या कम से कम मन्दिर की बातों से। असेनी लोग ऐसा ही एक समूह थे। बेशक यीशु के समय में यरूशलेम में ''असेनी स्थान'' का एक प्रमाण है, पर सबसे प्रसिद्ध असेनी समुदाय खारे समुद्र के तट पर, कुमरान में रहने वालों का है। इन लोगों को खारे समुद्र की पत्रियां उपलब्ध कराने वाले माना जाता है, जिसमे लेखकों के विश्वासों तथा व्यवहारों की गहन समझ होती है।

नये नियम में असेने लोगों का कोई गहन नहीं पर जोसेफ़स ने उनका वर्णन किया है। उनके लिए एक सम्भावित संकेत मत्ती 5:43 में मिल सकता है, जहां यीशु ने कहा, ''तुम सुन चुके हो कि कहा गया था, 'अपने पड़ोसी से प्रेम रखना और अपने बैरी से बैर।' '' पुराने नियम में ''बैरी से बैर'' रखने की कोई बात नहीं मिलती पर यह असेने लोगों की शिक्षा थी; सो हो सकता है कि यीशु ने उन्हीं का हवाला दिया हो।

(4) *जेलोतेस।* रोमी कब्जे के कारण जोशीले यहूदी राष्ट्रवादी उन्हें निकाल फैंकने के लिए कुछ भी करने को तैयार होंगे। ये राष्ट्रवादी लोग जिन्हें जेलोतेस कहा जाता है, और उनका मुख्य उद्देश्य ''इस्राएल की'' राजनैतिक स्वतन्त्रता ''बहाल करना'' था। कुछ लोग इस लक्ष्य तक पहुंचने के लिए क्रांति और कत्ल का सहारा लेने को तैयार थे।

जेलोतेस यहूदी धर्म के भीतर ही एक अलग समूह हो सकता है, या ये ''जोशीले लोग'' फरीसी हो सकते हैं। पौलुस ने अपने आपको ''अपने बाप दादों की परम्पराओं के लिए बहुत ही उत्साही'' (गलातियों 1:14) और ''उत्साह के विषय में यदि कहो तो कलीसिया का सताने वाला'' (फिलिप्पियों 3:6) के रूप में वर्णित किया; परन्तु कोई वचन राजनैतिक जोश की विशेष रूप से कोई बात नहीं करता। पौलुस के जेलोतेसी होने का प्रमाण बहुत कम है। परन्तु यीशु के चेलों में से एक का नाम ''शमौन [पतरस नहीं] जो जेलोतेस कहलाता है'' (लूका 6:15) बताया गया, जो यह सुझाव देता है कि वह किसी समय विद्रोही नेता रहा होगा या कम से कम उसने जेलोतेस लहर में सक्रिय भाग लिया होगा। यह याद करने पर कि यीशु के चेलों में से एक और मत्ती (लेवी) चुंगी लेने वाला था और परेशान करने वाला है-संक्षिप्त रूप में ऐसा यहूदी जो जेलोतेसी हत्या का निशाना रहा हो सकता है।

(5) *हेरोदेसी।* जैसा कि उनके नाम से संकेत मिलता है कि यह लोग प्रमुख (और मान लिया जाए कि धनवान) यहूदी थे जो यहूदी कठपुतली राजाओं की रोम के साथ मित्रतापूर्वक नीतियों का समर्थन करते थे। मरकुस 3:6 में उन्हें यीशु के विरुद्ध अपने शत्रुओं फरीसियों का पक्ष लेते बताया गया है। मत्ती 22:15, 16 कहता है कि हेरोदेसियों ने कैसर को कर देने की वैधता के सवाल पर यीशु को फंसाने की कोशिश की। यह हेरोदेसी चिंता की बात होगी और यीशु की बदनामी करने का भी अच्छा तरीका लग सकता है कि यदि वह कहे कि ''हां'' कर देना चाहिए

तो लोगों में उसका जनाधार कम हो जाएगा और यदि वह कहे ''नहीं'' तो वे रोमी अधिकारियों के सामने उसे विरुद्ध सरकारी आरोप लगाएंगे।

(6) *देश के लोग।* फलस्तीन की आम जनता या अधिकतर लोग, अन्य शब्दों में ऊपर बताए किसी भी दल के नहीं थे। उनके धनवान और अधिक चतुर धर्मशास्त्रीय समकालीनों द्वारा *am ha-aretz* (इब्रानी शब्द-देश के लोग स्पष्टतया प्रशंसा नहीं) कहलाते थे, वे किसान वर्ग के लोग थे, जिनको जीवन निर्वाह की मुख्य चिंता थी। उनके पास व्यवस्था या सदूकियों और हेरोदेसियों के राजनैतिक झगड़ों को सुलझाने के लिए समय नहीं था। यीशु के अधिकतर मानने वाले इसी समूह से लिए गए हैं। सम्भवतया क्योंकि पहले वे बिना आशा के और जहां तक शारीरिक शक्ति और सम्पत्ति की बात है, उन्हें कोई आशा नहीं थी और उसे खोने की कोई चिंता भी नहीं थी।

यीशु क्या था?

यीशु यहूदी धर्म के विश्वासों और व्यवहारों की विभिन्नता में यहां कहां फिट बैठता था? क्या वह इनमें से किसी समूह का सदस्य था या उसने अपने आपको इन सब से अलग रखा?

यीशु जेलोतेसी नहीं था, क्योंकि उसने कभी रोम के हिंसापूर्वक निकाले जाने की वकालत नहीं की, बल्कि शत्रुओं से प्रेम करने जैसी गैर जेलोतेसी अवधारणाओं की शिक्षा दी। इसी प्रकार से वह हेरोदेस नहीं था (क्योंकि उसके पास कोई सम्पत्ति या राजनैतिक प्रभाव नहीं था); और वह किसी याजकाई वर्ग से भी सम्बन्ध नहीं रखता था, जिस कारण वह सदूकी नहीं था। यह अवधारणा कि यीशु और उसके रिश्ते का भाई यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले असेने के मुख्यतया इन तथ्यों पर आधारित है कि वे अन्य श्रेणियों में और इन दोनों में से किसी में फिट नहीं थे क्योंकि कई बार उन्होंने यहूदी मुख्यधारा को मज़बूती से नकारा था (लूका 3:7-14; मत्ती 23:1-39)। वास्तविकता में यूहन्ना और यीशु दोनों की धर्मशिक्षा असेनी लोगों की शिक्षा से बिल्कुल विपरीत है, जो इसे उनके लिए बिल्कुल असम्भव बना देती है।[1]

1. यीशु और फरीसियों के बीच की शत्रुता के कारण, जैसा कि सुसमाचार के विवरणों में स्पष्ट पुष्टि होती है, हम यह निष्कर्ष निकालने लग सकते हैं कि उनके साथ उसकी कोई बात मेल नहीं खाती। परन्तु यह मान्यता गलत है। यीशु भी फरीसियों की तरह व्यवस्था का बहुत सम्मान करता था (मत्ती 5:17-19), चाहे उसने उन पर व्यवस्था को पूरी तरह से पूरा न करने का आरोप लगाया (मत्ती 5:20; 23:16-28)। मत्ती 23:1-3 में हमें फरीसियों की धार्मिक अगुआई के लिए आश्चर्यजनक सम्मान मिलता है: ''तब यीशु ने भीड़ से और अपने चेलों से कहा, शास्त्री और फरीसी मूसा की गद्दी पर बैठे हैं; इसलिए वे तुम से जो कुछ कहें वह करना, और मानना; परन्तु उन के से काम मत करना; क्योंकि वे कहते तो हैं पर करते नहीं।''

अपनी शिक्षाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने में फरीसी नाकाम रहे थे, न कि शिक्षा, और यीशु ने इसी बात की निंदा की। इसी प्रकार यीशु ने जी उठने और मृत्यु के बाद के जीवन की अवधारणा का पक्ष लेते हुए स्पष्ट रूप में यीशु ने फरीसियों का साथ दिया (लूका 20:27-40) उसने स्वर्गदूतों और दुष्टात्माओं के अस्तित्व में उनके विश्वास को सही माना। (लूका 20:36 में उसने स्वर्गदूतों की बात की और हम यीशु द्वारा दुष्टात्मओं को निकालने के कई विवरण पढ़ते

हैं।) कई बार यीशु फरीसियों के साथ सामाजिक और बिल्कुल दोस्ताना माहौल में बात करता था (लूका 7:36; 11:37; 14:1)। ''कुछ फरीसियों'' ने यीशु को चेतावनी दी कि हेरोदेस उसे मरवाने का इच्छुक है (लूका 13:31), और यीशु ने एक ग्रंथी (जो मान लें कि फरीसी भी है) के ''परमेश्वर के राज्य से अधिक दूर नहीं'' (मरकुस 12:28-34) की बात कहकर उसकी तारीफ़ की। एक फरीसी ने यीशु के बचाव में बोला और बाद में महासभा (यहूदियों की कानूनी सभा) के एक और सदस्य के साथ, उसकी देह को दफ़नाए जाने तक देखा (यूहन्ना 3:1; 7:45-52; 19:39, 40)।

बेशक यीशु महत्वपूर्ण ढंगों से अलग था, जैसा कि सहदर्शी वृत्तांतों में मिलने वाली कई ''अलग अलग कहानियों'' में विशेष रूप से पता चलता है। फरीसी लोग सब्त के दिन की रक्षा करने में तो जोश से भरे थे, पर कई ऐसे गतिविधियों को रोककर जिनका मूसा की व्यवस्था में उल्लेख नहीं था। यीशु ने सब्त के मनाए जाने को मनुष्य की आवश्यकता को पूरा करने के लिए गौण बना दिया (मरकुस 2:23-3:5; लूका 13:10-17)। उसने यह दावा करते हुए कि जो कुछ व्यक्ति खाता है वह उसे अशुद्ध नहीं करता बल्कि जो उसके अन्दर से निकलता है, उसे अशुद्ध करता है, फरीसियों के खाने पीने के नियमों की आलोचना की (मरकुस 7:14-23)। उसने उनकी मौखिक परम्परा का वहां कोई सम्मान नहीं दिखाया जहां यह मूसा की व्यवस्था से भिन्न हो।

बेशक कई मामलों में यीशु के अपने विचार फरीसियों के विचारों से मेल खाते थे, पर ऐसा लगता नहीं है कि वह उन में से एक हो। उसकी पारिवारिक पृष्ठभूमि और अपने आपको निर्धनों व निकाले हुए के साथ मिलाने की प्रवृत्ति फरीसियों से बिल्कुल मेल नहीं खाती थी (देखें लूका 15:1, 2)। हमें सम्भवतया यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि यीशु आम लोगों में से यानी ''देश के लोगों'' में से था, परन्तु बहुत ही साधारण ढंग से। इसका अर्थ यह नहीं कि यीशु ''सांसारिक'' यहूदी पृष्ठभूमि से आया। इसके विपरीत उसके माता पिता श्रद्धालु, नियमों का पालन करने वाले यहूदी थे, जैसा कि उसके जन्म की कहानियों में अधिकतर देखा जाता है (मत्ती 1; 2; लूका 1; 2)।

सारांश

यीशु को उसकी यहूदी पृष्ठभूमि से अलग समझने की कोशिश करने के बजाय, जो कुछ उस पृष्ठभूमि के बारे में जान सकते हैं उससे कहीं समझ आता है और फिर हम उससे जोड़कर यीशु को समझ सकते हैं। आखिर यीशु जो मसीहा है, सबसे पहले यीशु यहूदी है।

टिप्पणी

[1]इसकी व्याख्या जेम्स एच. चार्ल्सवर्थ, सम्पा., *जीज़स एंड द डेड सी स्क्रॉल्स* (न्यू यॉर्क: एंकर बाइबल रेफरेंस लाइब्रेरी, डबलडे, 1992) के पहले अध्याय डेड सी स्क्रॉल्स में दी गई है।